RESEARCH HUB – International Multidisciplinary Research Journal (RHIMRJ)
Research Paper

महर्षि दयानंद सरस्वती का आर्य समाज के उत्थान में योगदान

डॉ0 पूर्णिमा कुमारी

इतिहास विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

आर्य समाज की स्थापना दयानन्द सरस्वती ने 1875 ई. में बंबई में की। यह भी भारतीय राष्ट्रवाद के प्रारंभिक तूफान का परिचायक था लेकिन यह बिल्कुल भिन्न प्रकार का आंदोलन था। इसमें पुरानी प्रवृत्तियों को पुनः स्थापित करने की बात पर विशेष जोर दिया गया था। इसके अनुसार वेद संपूर्ण भ्रम को मिटाने वाला तथा भूत, वर्तमान, भविष्य के ज्ञान का अविरल स्त्रोत है। यह दार्शनिक, तकनीकी, वैज्ञानिक सब प्रकार के ज्ञानों का भण्डार हैं इसमें सारा आधुनिक रूपायन, अभियंत्रण, सैनिक और गैर–सैनिक ज्ञान यत्र–तत्र बिखरा हुआ है। वेदों के अमोघतव का सिद्धान्त प्रतिपादित कर आर्यसमाज ईश्वरीय वाक्य सूत्र के समक्ष व्यक्तिगत निर्णय को कोई महत्त्व प्रदान नहीं करता है। इस तरह ब्राह्मणों के अधिकार और अन्याय से व्यक्ति को मुक्त करते हुए भी आर्य समाज वेदों में संपूर्ण आस्था की माँग करता था। आर्य समाज ने व्यक्तिगत निर्णय की स्वतंत्रता के बदले वेदों की प्रामाणिकता स्थापित की। इसने ब्राह्मणों की सत्ता का खंडन किया तथा निरर्थक कर्मकाण्डों और विभिन्न देवी–देवताओं की मूर्तियों की उपासना को व्यर्थ बतलाया। यह वंशानुगत जाति प्रथा के विरूद्ध था तथा कर्म के द्वारा स्थापित समाज में इसका विश्वास था।

इसने अपने सिद्धान्तों और मन्तव्यों को देश तथा काल के सापेक्ष नहीं बनाया। संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य बताया गया है तथा मनुष्य की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नति को सर्वोपरी लक्ष्य ठहराया गया है। मानव के व्यापक हित को अपना ध्येय मानते हुए भी आर्य समाज की शिक्षाओं का राष्ट्रहित से कोई विरोध नहीं है। इसके द्वारा देश का जो व्यापक हित हुआ है, यही उसके लोकप्रियता का उज्जवल उदाहरण है। ब्रह्म समाज आदि संस्थाएँ जहाँ एक स्पष्ट राष्ट्रीय नीति के अभाव में काल कवलित हो गया वहाँ आर्य–समाज ने धर्माचरण तथा राष्ट्र सेवा को सदा अभिन्न समझा। देश के राष्ट्रीय जागरण तथा स्वाधीनता प्राप्ति के पुनीत कार्य में आर्य समाज के अनुयायियों का जो उल्लेखनीय योगदान रहा, वह सर्वविदित है।

यह देश के सर्वतोन्मुखी एकता के लिये बहुधा योजनाएँ लेकर उपस्थित हुआ। आर्य समाज स्वीकार करता है कि इस देश के निवासी एक ही संस्कृति तथा एक ही प्रकार की भावधारा के अनुयायी आर्य है। स्वामी दयानन्द यह अनुभव करते थे कि भारत के निवासियों को ''आर्य शब्द'' से संबोधित करना अधिक गौरवास्पद है। उनकी यह धारणा थी कि आर्य शब्द में जो चारूता, अर्थ गौरव तथा उदात्तता के भाव निहित है वे ''हिन्दू'' शब्द में नहीं है। आर्य श्रेष्ठ, धार्मिक, आस्तिक एवं साधु प्रवृत्ति के पुरूषों का परिचायक है। इसलिये उन्होंने इस देश को आर्यावर्त्त तथा उनकी भाषा को ''आर्यभाषा'' के नाम से अभिहित किया। वस्तुतः आर्य शब्द किसी जाति या नस्ल का सूचक न होकर गुणवाचक है। बौद्ध और जैन सम्प्रदाय को भी आर्य समाज शब्द से विरक्त नहीं है क्योंकि उनके साहित्य में आर्य शब्द का प्रयोग हुआ है। पुरातन वैदिक साहित्य में इस देश के लिये ''आर्यावर्त्त'' शब्द का ही प्रयोग हुआ है। मनुस्मृति में आर्यवर्त्त ही कहा गया है।

आर्य समाज की मान्यता रही है कि आर्य लोग इसी देश के निवासी हैं। वे कहीं अन्य स्थान से नहीं आये। वस्तुतः यूरोपीय विद्वानों का भरपूर प्रयास रहा कि वे येन–केन प्रकारेण यह सिद्ध कर दें कि आर्य लोग इस देश के मूल निवासी नहीं थे। आश्चर्य की बात है कि लोकमान्य तिलक जैसे राष्ट्रवादी नेताओं ने भी ज्योतिष के कुछ सिद्धान्तों के आधार पर उत्तरी ध्रुव प्रदेशों से आर्यों का भारत आगमन सिद्ध करना चाहा। स्वामी दयानन्द प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने लिखा कि आर्य लोग इसी देश के निवासी है वे कहीं अन्य स्थान से नहीं आये। वे लिखते है कि ''किसी संस्कृत ग्रन्थ या इतिहास में नहीं लिखा है कि आर्य लोग ईरान से आये और यहाँ के जंगलियों को पराजित करके और निकाल कर इस देश के राजा हुए, पुनः विदेशियों का लेख माननीय कैसे हो सकता है। कालान्तर में डॉ. सम्पूर्णानन्द ने अपने ''आर्यों का आदिदेश'' नामक ग्रंथ में सप्रमाण सिद्ध किया है कि भारत ही आर्यों का आदि स्थान है। ''आर्य'' शब्द के सांस्कृतिक अर्थ को ध्यान में रखते हुये यह कहा जा सकता है कि आर्यों का आदिम स्थान भारत के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं है। ऋग्वेद तथा संस्कृत भाषा की सहायता से यह कहा जा सकता है कि आर्य भारत के ही थे, कहीं बाहर से नहीं आये थे। उनके प्राचीन साहित्य में उनके बाहर से आने का किंचित् मात्र भी उल्लेख नहीं है और न कोई ऐसी ऐतिहासिक खोज की गई है जो इसे प्रमाणित कर सके कि आर्य बाहर से आये थे। यह तो निश्चित रूप से

2016, RHIMRJ, All Rights Reserved ISSN: 2349-7637 (Online)

कहा जा सकता है कि जिन आर्यों की संस्कृति ने विश्व को प्रभावित किया तथा प्राचीन संस्कृतियों का स्त्रोत बनी वे आर्य भारत में ही पैदा हुये थे तथा यहीं से अपनी संस्कृति का प्रसार किया।

आर्य समाज ने ''एकता'' का मंत्र प्रसारित किया। इस महान उद्देश्य की प्राप्ति के लिये आर्य समाज ने शुद्धि और संगठन का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। उसकी यह धारणा रही है कि पुरातन काल में जो जातियाँ, संस्कार भ्रष्ट होकर अनार्य हो गयी थीं उन्हें पुनः शुद्ध कर वृहत्त आर्य समाज में सम्मिलित किया जाय। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने जीवन काल में देहारादून के मुहम्मद अमर नामक एक मुसलमान को वैदिक धर्म की दीक्षा देकर ''अलखधारी'' नाम प्रदान किया। भारत के राजनैतिक क्षितिज पर उदित मुस्लिम साम्प्रदायिकता के धूमकेतु को विनष्ट करने के लिये बुद्धि और संगठन ही अमोघ उपाय सिद्ध हुआ।

शुद्धि आन्दोलन ने हिन्दू समाज को सुदृढ़ और प्राणवान बनाया। कुछ लोगों ने शुद्धि आन्दोलन को हिन्दू धर्म के विरूद्ध बतलाया तथा आशंका व्यक्त किया कि इस आन्दोलन से मुसलमान भारत की राजनीतिक धारा से पृथक् हो जायेंगे लेकिन आर्य समाज ने इस प्रकार की सभी आपत्तियों का निराकरण किया और सिद्ध किया कि इससे स्वाधीनता आन्दोलन में किसी प्रकार का व्याघात नहीं पड़ेगा। स्वामी श्रद्धानन्द और महात्मा हंसराज के नेतृत्व में मलकानों की शुद्धि की गयी जो नव–मुस्लिम थे तथा आचार–विचार की दृष्टि से राजपूतों से अधिक भिन्न नहीं थे। निश्चय ही शुद्धि आन्दोलन राष्ट्रीय और सांस्कृतिक एकता का सुदृढ़ आधार प्रस्तुत करता है हालांकि शुद्धि आन्दोलन का विरोध मुसलमानों द्वारा उग्र रूप से किया गया। इसका कारण था कि स्वामी श्रद्धानन्द और आर्य समाज के नेतृत्व में शुद्धि आन्दोलन जिस वेग से जोर पकड़ रहा था, उससे ईसाइयों तथा मुसलमानों का विक्षुब्ध होना सर्वथा स्वाभाविक था।

मध्यकाल में हिन्दू–लोग इतने संकीर्ण हो गये थे कि किसी विधर्मी को अपने धर्म में दीक्षित करने का निर्णय तो स्वप्न में भी नहीं ले सकते थे, और परिस्थितिवस भय, लालच या क्षणिक आवेश के कारण जिस किसी ने इस्लाम को ग्रहण कर लिया हो, उसे भी अपने धर्म में वापस लेना उनकी दृष्टि में सर्वथा अनुचित व अकल्पनीय था। पर भारतीय हिन्दू–सभा हिन्दुओं की इस मनोवृत्ति में जो परिवर्तन ला रही थी, और आर्य समाज द्वारा जिस ढंग से उसका नेतृत्व किया जा रहा था, मुसलमान उसे सहन नहीं कर सके। वे हर संभव उपाय से आर्य समाज का विरोध करने और सांप्रदायिक विद्वेष का प्रादुर्भाव करने के लिये प्रयत्नशील हो गये।

अपने सारे क्रिया–कलाप में आर्य समाज राष्ट्रीयता और प्रजातंत्र की भावना से अनुप्रेरित ाि। इसने उप–जातियों को समाप्त कर हिन्दुओं के समन्वय की चेष्टा की। इसने लोगों में शिक्षा का प्रसार किया, जाति, धर्म, सम्प्रदाय, लिंग आदि विभेदों के बावजूद मानव मात्रा की एकता के सिद्धान्त का उद्घोष किया। गुलाम देश की प्रजा होने के नाते भारतवासियों में जो हीन–भावना घर कर गयी थी, उसे समाप्त करने का उचित प्रयास आर्य समाज ने किया। स्वामी जी ने एकतंत्री शासन की लोकहित सर्वथा प्रतिकूल माना था। वे प्रजातंत्रात्मक शासन व्यवस्था के पक्ष में थे। उन्होंने लिखा है कि प्रजा को इस बात का सदा ध्यान रखना चाहिये कि उनके देश का शासन किसी सभा के अधीन हो न कि किसी व्यक्ति। राजा के लिये यह आवश्यक माना गया है कि वह जन–साधारण की सम्मति का आदर करें। प्रजा की साधारण सम्मति के विरूद्ध राजा या राजपुरूष कभी न चले।... राजा को निर्वाचित राज्य सभा से परामर्श लेकर शासन संचालन करना चाहिये। राजा अपने मन से एक भी कार्य न करे जब तक सभासदों की अनुमति न हो।''

आर्य समाज उस शासन प्रणाली का अनुमोदन करता है जो मनु, शुक्र, याज्ञवल्क्य, चाणक्य आदि के द्वारा प्रतिपादित किया गया है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वर्तमान परिस्थितियों और परिवेशों की पूर्ण अवहेलना करना आर्य समाज पुराकालीन जीवन प्रणाली को यथावत स्वीकार कर लेता है। इसका अभिप्राय केवल इतना ही है कि धर्म और नीति के मूलभूत तत्त्वों का विवेचन इन ऋषियों ने इस प्रकार किया है कि वे किसी भी देश के प्रशासन के लिये उचित हो सकता है। इस शासन व्यवस्था के अन्तर्गत देश के सभी नागरिकों को समान अधिकार प्राप्त होते है। बंबई में जब प्रथम बार आर्य समाज की स्थापना हुई और उसके 28 नियम निर्धारित किये गये, उसी समय संस्था के साधारण सभासदों की सम्मति को ही महत्त्व प्रदान किया गया।

गोरक्षा के लिये आर्य समाज सदा से ही प्रयत्नशील रहा है। स्वामी दयानन्द ने तो अपने जीवन काल में यह चेष्टा की ाी कि वैधानिक उपायों से गो–वध पर प्रतिबन्ध लगाने के लिये अंग्रेज सरकार को मनाया जा सके। जब देश स्वतंत्र हुआ और भारतीय संविधान के निर्माताओं ने यह प्रावधान किया कि गोवंश के दुधारू पशुओं के वध पर रोक लगाने का अधिकार शासकों को है तो आर्य समाज की आशा थी कि कांग्रेस गो–वध को रोकेगी लेकिन आर्य समाज को इससे बड़ी निराशा हुई क्योंकि सरकार कुछ सम्प्रदायों की तुष्टि के लिये गोवध पर प्रतिबन्ध लगाने में संकोच कर रही है। गोरक्षा के लिये सत्याग्रह और आन्दोलन करने में आर्य अकेला नहीं था। देश के करोड़ों सनातन धर्मावलम्बी जैन, सिख आदि भी उसके साथ थे। 1954–55 में भी आर्य समाज के नेता स्वामी धूवानन्द जी सरस्वती के नेतृत्व में देश के लाखों नागरिकों ने गोवध के विरोध में हस्ताक्षर करा कर सरकार को प्रस्तुत किया था। किन्तु जब उसने यह अनुभव किया कि वैधानिक उपायों से गोरक्षा में सफलता मिलना संभव नहीं है तो विवश होकर उसने सत्याग्रह का मार्ग अपनाया उसके अनुसार गोरक्षा का प्रश्न केवल हिन्दुओं या आर्य समाज का

नहीं बल्कि इसका निषेध सभी देशवासी के लिये उपयोगी। गोरक्षा आर्थिक दृष्टि से देश के लिए परम हितकारी है। इसके साथ ही आर्य समाज का कहना है कि गोरक्षा का प्रश्न हिन्दू जनता की भावना का प्रश्न बन गया है और लोकतंत्र का यह तकाजा है कि वह बहुमत की भावनाओं का आदर करे। जीव हत्या किसी भी धर्म या मत में उचित कर्त्तव्य नहीं माना गया है।

आर्य समाज ने धर्म के नाम पर बढ़ने वाले ढोंग, पाखंड और आडंबर के विरूद्ध प्रबल आन्दोलन उपस्थित कर नकली भगवानों पाखण्डी धर्माचार्यों और जनता की धार्मिक भावनाओं का अनुचित लाभ उठाकर उन्हें गुमराह करने वाले योगियों, अध्यात्म गुरूओं तथा मठाधिशों के प्रभुत्व को समाप्त करने का प्रयास किया। जन समाज में व्याप्त अनैतिकता, भ्रष्टाचार तथा नैतिक मूल्यों के चतुर्मुखी पतन को रोकने के लिये चरित्र निर्माण का व्यापक आंदोलन संचालित किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. अलगूराय शास्त्री – लाला लाजपत राय, दिल्ली, 1957।
2. इन्द्र विद्यावास्पति – आर्य समाज का इतिहास, द्वितीय भाग, दिल्ली 1957।
3. गुप्त, मन्मथनाथ – भारतीय क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास।
4. चाँदीवाला, ब्रजकृष्ण – गाँधीजी की दिल्ली डायरी, 4 खण्ड, पृ. 1969।
5. प्रभाकर, कन्हैयालाल मिश्र – उत्तरप्रदेश स्वाधीनता संग्राम की एक झांकी, लखनऊ 1983।
6. भीमसेन विद्यालंकार – आर्य प्रतिनिधि सभा का सचित्र इतिहास, लाहौर, 1935।
7. शिवदयालु – आर्य समाज की प्रगतियाँ एवं आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश का 75 वर्षीय इतिहास, लखनऊ, 1963।
8. आदिम सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज के सिद्धान्त, 1917, सद्धर्म प्रचारक मन्त्रालय, दिल्लीं
9. डॉ. विजयेन्द्र पाल – भारतीय राष्ट्रवाद एवं आर्यसमाज आन्दोलन, साहिबाबाद, 1977।
10. इन्द्र विद्यावाचस्पति – जीवन की झाँकियाँ, प्रथम खण्ड, दिल्ली के स्मरणीय बीस दिन।

2016, RHIMRJ, All Rights Reserved

ISSN: 2349-7637 (Online)